आचार्य श्री की देन : साधना के क्षेत्र में

□ श्री चाँदमल कर्णावट

पू० आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० की साहित्य, धर्म, दर्शन, इतिहास, साधना, स्वाध्याय, व्यसनमुक्ति एवं समाज-संगठन आदि क्षेत्रों में महनीय देन रही है। इसे जैन समाज व सामान्य जनसमुदाय कभी नहीं भुला सकेगा। जन-जन के मनमानस पर आचार्यश्री की उत्कृष्ट साधुता एवं आदर्श संयमी जीवन की एक अमिट छाप सदा बनी रहेगी। 'जैन धर्म के मौलिक इतिहास' के मार्ग-दर्शक आचार्य श्री हस्ती स्वयं अपना इतिहास गढ़ गये हैं, जो सदा सर्वदा आदरणीय, स्मरणीय एवं उल्लेखनीय रहेगा।

आचार्यश्री उच्चकोटि के योगी थे और थे साधना के आदर्श। ज्ञान, दर्शन, चारित्र की साधना तो उनका जीवन थी। उनके जीवन और मरण में साधना जैसे रम गई थी। वे साधनामय बन गये थे। कितना अप्रमत्त था उनका जीवन। ध्यान, मौन, जप, तप, स्वाध्याय आदि की साधना में डूबे रहते थे वे। निष्कषायता एवं निर्मलता की छाप थी उनके जीवन-व्यवहारों में। अत्यल्प सात्विक आहार और अत्यल्प निद्रा, शेष सम्पूर्ण समय संयम-साधना में, भगवान महावीर के महान् सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में विशेषतः साहित्य-सृजन में वे लगाया करते थे। प्रत्येक दर्शनार्थी को स्वाध्याय एवं धर्मसाधना की पूछताछ एवं प्रेरणा देने के बाद चन्द मिनटों में ही अपनी साधना में संलग्न हो जाते। संयम, सादगी, सरलता और अप्रमत्तता का उदाहरण था आचार्य प्रवर का जीवन।

साधना क्षेत्र में एक महान् क्रांतिकारी रचनात्मक कदम उठाया आचार्य श्री हस्ती ने। साधना की उनकी अपनी अवधारणा थी। साधना प्रवृत्ति की उनकी मौलिक विशेषताएँ थीं। साधना क्यों की जाय? उसका क्या स्वरूप हो? ज्ञान, दर्शन, चारित्र की साधना कैसी हो? इन सभी के बारे में उनके अपने विचार थे, जिन्हें इस निबन्ध में क्रमशः विस्तार से बताया जा रहा है।

एक क्रांतिकारी सृजन—आचार्य श्री हस्ती एक दूरदर्शी सन्त थे। उन्होंने भावी समाज की कल्पना करके स्वाध्याय प्रवृत्ति का व्यापक प्रसार तो किया ही, उससे भी आगे बढ़कर उन्होंने साधक संघ के गठन की भी महती प्रेरणा दी।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भौतिकता की प्रबल आँधी में जैन संस्कृति के संरक्षक की दृष्टि से साधक संघ का दीप प्रदीप्त किया। साधक संघ से आचार्यश्री का अभिप्राय श्रमण और गृहस्थ के बीच के वर्ग से था, ऐसे साधक जो गृहस्थ जीवन के प्रपंचों से ऊपर उठे हुए हों। वे निर्व्यसनी जीवन बिताते हुए, श्रावक धर्म का पालन करते हुए, जीवनदानी बनकर समाजोत्थान एवं धर्म प्रचार के कार्य में लग सकें। स्वयं के जीवन को साधकर देश-विदेश में प्रभु महावीर के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार कर सकें। इस संघ के निर्माण के पीछे उनका उद्देश्य था कि ज्ञान और क्रिया दोनों का साधक वर्ग में समावेश हो, सामंजस्य हो। क्रिया के अभाव में ज्ञान अपूर्ण है, अतः ज्ञान के साथ क्रिया का समन्वय, सामंजस्य हो साधक वर्ग में। वे ज्ञान-क्रिया की आराधना करते हुए जीवन में अग्रसर हों और प्रभु महावीर के सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान कर सकें।

संवत् २०३४ में आचार्य प्रवर के ब्यावर चातुर्मास में आचार्यश्री की साधना संघ की प्रेरणा को समाज में सादर क्रियान्वित करने की योजना बनी। लेखक को यह दायित्व सौंपा गया। आचार्य प्रवर की सद्प्रेरणा से अनेक साधक तैयार हुए जो साधक संघ की योजनानुरूप कार्य करने को इच्छुक थे। स्वाध्यायी तो ये थे ही। साधना मार्ग पर आगे बढ़ने को ये तत्पर थे। कुछ समय बाद साधक संघ का विधिवत् गठन हुआ। संक्षेप में साधक संघ के तीन उद्देश्य रखे गये थे—

१. साधक वर्ग में स्वाध्याय, साधना एवं समाज-सेवा की प्रवृत्ति को विकसित करने के लिए समुचित व्यवस्था करना।

२. पू० साधु-साध्वीजी एवं गृहस्थ समुदाय के बीच का एक साधक वर्ग गठित करना जो सामान्य गृहस्थ से अधिक त्यागमय जीवन बिताते हुए देश-विदेश में जैन धर्म का प्रचार-प्रसार कर सके।

३. समाज एवं धर्म के लिए साधक वर्ग की सेवाएँ उपलब्ध कराना।

साधक संघ का गठन—इस प्रवृत्ति को **साधना विभाग** के नाम से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर के तत्त्वावधान में कार्यरत स्वाध्याय संघ के अन्तर्गत रखा गया, परन्तु व्यवस्था की दृष्टि से इसे अलग से रखा गया है जिससे स्वाध्याय संघ के बढ़ते हुए कार्यक्रम के संचालन में असुविधा न हो।

साधकों की आचार-संहिता—यह आचार संहिता प्रत्येक श्रेणी के साधक के लिए अनिवार्य है। इसमें (i) देव अरिहंत, गुरु निर्ग्रन्थ एवं केवली प्ररूपित धर्म में आस्था/श्रद्धा रखना, (ii) सप्त कुव्यसनों का त्याग, (iii) प्रतिदिन नियमित सामायिक साधना करना, (iv) जीवन में प्रामाणिकता, (v) परदार

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

का त्याग एवं स्वदार में संतोष रूप ब्रह्मचर्य का पालन, (vi) रात्रि भोजन का त्याग, (vii) १४ नियम एवं तीन मनोरथ का चिंतवन एवं विभाग द्वारा आयोजित साधना शिविर में भाग लेना तथा प्रतिदिन स्वाध्याय करना सम्मिलित है।

साधक श्रेणियाँ एवं साधना—साधकों की तीन श्रेणियाँ हैं—साधक, विशिष्ट साधक एवं परम साधक। सभी श्रेणियों में साधना संघ के उद्देश्यों के अनुरूप स्वाध्याय, साधना एवं समाज-सेवा के लिए नियम निर्धारित किये गये हैं।

वर्तमान में ५६ साधक इस संघ के सदस्य हैं। इनमें (दस) साधक, बारह व्रती व शेष सभी अणुव्रतधारी हैं। सभी व्यसन त्यागी, प्रामाणिक जीवन जीने वाले तथा दहेजादि कुप्रथाओं के त्यागी हैं।

साधक घर पर रहते हुए प्रतिदिन नियमित स्वाध्याय, ध्यान, मौन, तप एवं कषाय विजय की साधना करते हैं। पौषध व्रतादि की आराधना करते हुए समाज-सेवा के कार्यों में भी अपना समय देते हैं।

साधक संघ के संचालन का कार्य वर्तमान में लेखक के पास है। प्रति दो माह/तीन माह में साधकों से पत्र-व्यवहार द्वारा उनकी साधना विषयक गतिविधि की जानकारी प्राप्त की जाती है।

शिविर आयोजन—वर्ष में एक या दो साधक शिविर आयोजित किये जाते हैं। इसमें उक्त साधना तथा ध्यान-साधना का अभ्यास कराया जाता है। पंचदिवसीय शिविर में दयाव्रत में रहते हुए साधक एकांत स्थान पर स्वाध्याय ध्यान, तप, मौन, कषाय-विजय आदि की साधना करते हैं। ध्यान पद्धति की सैद्धांतिक जानकारी भी दी जाती है। कुछ विशेष साधनाओं पर शिविरायोजन होते हैं। अभी तक समभाव साधक, इन्द्रिय विजय साधक, मनोविजय और कषाय विजय पर विशेष शिविर आयोजित किये जा चुके हैं जो पर्याप्त सफल रहे हैं।

धर्म-प्रचार यात्राएँ—विगत वर्षों में साधकों एवं स्वाध्यायियों ने महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश एवं राजस्थान राज्यों में धर्मप्रचार यात्राएँ सम्पन्न कर ग्राम-ग्राम एवं नगर-नगर में प्रार्थना सभाओं, धार्मिक पाठशालाओं, स्वाध्याय एवं साधना के प्रति जन-जन में रुचि जागृत की है। सप्त कुव्यसन, दहेजादि कुप्रथाओं तथा अन्य-अन्य प्रकार के प्रत्याख्यान करवाकर लोगों में अहिंसादि के संस्कार दृढ़ बनाये हैं।

आचार्य प्रवर की साधना विषयक अवधारणा—पू० आचार्यश्री की दृष्टि में साधना का आध्यात्मिक स्वरूप ही साधना विषयक अवधारणा का मूल रहा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

है। उनके प्रवचनों में अनेक स्थानों पर इस अवधारणा का उल्लेख हुआ है। आचार्यश्री के मतानुसार—"प्रतिकूल मार्ग की ओर जाते हुए जीवन को मोड़कर स्वभाव के अभिमुख जोड़ने के अभ्यास को साधना कहते हैं।"[१] इसी को स्पष्ट करते हुए आगे बताया गया है—'सत्य को जानते और मानते हुए भी चपलता, कषायों की प्रबलता और प्रमाद के कारण जो प्रवृत्तियाँ बहिर्मुखी गमन करती हैं, उनको अभ्यास के बल से शुद्ध स्वभाव की ओर गतिमान करना, इसका नाम साधना है। साधना के आध्यात्मिक स्वरूप की रक्षार्थ साधना क्षेत्र में बाह्य और आंतरिक परिसीमन की नितान्त आवश्यकता है तथा दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। आचार्यदेव का विचार है—"इच्छाओं की लम्बी-चौड़ी बाढ़ पर यदि नियन्त्रण नहीं किया गया तो उसके प्रसार में ज्ञान और विवेक आदि सद्‌गुण प्रवाह-पतित तिनके की तरह बह जाएँगे।"[२] आचार्यश्री का मन्तव्य रहा कि "त्याग-वैराग्य के उदित होने पर सद्‌गुण अपने आप आते हैं जैसे उषा के पीछे रवि की रश्मियाँ स्वतः ही जगत् को उजाला देती हैं।"[३]

साधना को आचार्यश्री ने अभ्यास के रूप में देखा है। इसलिए वे प्रवचनों में फरमाते थे—'साधना या अभ्यास में महाशक्ति है। वे अपने प्रवचनों में सर्कस के जानवरों के निरन्तर अभ्यास का उदाहरण देकर मानव जीवन में साधना की उपलब्धियों पर बल देते थे।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र की साधना के विषय में आचाय प्रवर का विचार था 'ज्ञान के अभाव में साधना की ओर मनुष्य की प्रवृत्ति नहीं होती, अतः सर्व प्रथम मनुष्य को ज्ञान-प्राप्ति में यत्न करना चाहिए।'[४] आरम्भ और परिग्रह साधना के राजमार्ग में सबसे बड़े रोड़े हैं। जैसे केंचुली साँप को अन्धा बना देती है वैसे ही परिग्रह की अधिकता भी मनुष्य के ज्ञान पर पर्दा डाल देती है। ज्ञान की महिमा को बताते हुए कहा गया—'त्याग के साथ ज्ञान का बल ही साधक को ऊँचा उठाता है।' आचार्यश्री का मत है 'विचार शुद्धि के बिना आचार शुद्धि सम्भव नहीं है। सम्यग्दर्शन को सरल किन्तु सारगर्भित रूप में प्रस्तुत करते हुए आचार्यश्री ने बताया—'धर्म-अधर्म, पूज्य-अपूज्य आदि का विवेक रखकर चलना सम्यग्दर्शन है। सम्यग्चारित्र के सम्बन्ध में बताया गया 'क्रिया के अभाव में ज्ञान की पूर्ण सार्थकता नहीं है।'[५]

---

१. जिनवाणी (मासिक) अगस्त १९८२, पृ. १
२. 'जिनवाणी', अप्रैल १९८१, पृ. १-२
३. जिनवाणी, अक्टूबर १९७०, पृ. ५-६
४. आध्यात्मिक आलोक, पृ. ३७
५. आध्यात्मिक आलोक, पृ. १५-१७

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पू० आचार्यश्री ने जैन दर्शन के अनुसार दमन के स्थान पर शमन को महत्त्व दिया है। उनका विचार रहा कि 'धर्मनीति शमन पर अधिक विश्वास करती है। शमन में वृत्तियाँ जड़ से सुधारी जाती हैं। रोग के बजाय उसके कारणों पर ध्यान दिया जाता है। इसलिए उसका असर स्थायी होता है, फिर भी तत्काल की आवश्यकता से कहीं दमन भी अपेक्षित रहता है जैसे उपवास आदि का प्रायश्चित्त। यद्यपि इसमें भी उद्देश्य सत्शिक्षा से साधक की वृत्तियों को सुधारने का ही रहता है।[1]

साधना प्रवृत्ति की उनकी कतिपय मौलिक विशेषताएँ :

आचार्यश्री की साधना सम्बन्धी कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

१. **समग्रता**—आचार्यश्री द्वारा साधना-पद्धति का जो मार्गदर्शन समय-समय पर दिया गया, उससे ज्ञात होता है कि वे साधना में समग्रता के हामी थे। उन्होंने केवल मन या केवल काया की साधना पर बल न देकर तीनों योगों की साधना को समग्र रूप प्रदान किया। उनका विचार था मन, वाणी और काया की साधना करने से सहज ही आत्मा की शक्ति बढ़ेगी, यश प्राप्त होगा, समाज में सम्मान और सुख प्राप्त होगा।[2] आज भी साधक संघ के सदस्य मन की साधना ध्यान द्वारा, वाणी की साधना मौन द्वारा और काया की साधना तप के द्वारा कर रहे हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र की समन्वित साधना पर ही आचार्यश्री का विशेष बल था। स्वाध्याय प्रवृत्ति पर विशेष बल देते हुए भी उनकी दृष्टि में ज्ञान-क्रिया दोनों का समान महत्त्व था। साधक संघ में क्रिया के साथ ज्ञान या स्वाध्याय पर भी उतना ही बल दिया गया है। आचार्य प्रवर का मत था "सम्यग्ज्ञानादि त्रय से ही व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व का कल्याण सम्भव है।"

२. **संघपरकता या समाजपरकता**—आचार्यश्री ने साधना को एक क्रांतिकारी नूतन आयाम देने का भी विचार रखा। उनका विचार था कि साधना व्यष्टि परक ही न होकर संघपरक या समाजपरक भी हो। एतदर्थ उन्होंने सामाजिक या संघधर्म के रूप में स्वाध्याय-साधनादि की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट किया। आचार्यश्री का विचार था कि "व्यक्तिगत प्राप्त प्रेरणा ढीली हो जाती है। यदि कुल का वातावरण गन्दा हो, पारिवारिक लोग धर्मशून्य विचार के हों तो मन में विक्षेप होने के कारण व्यक्ति का श्रुतधर्म और चारित्र धर्म ठीक नहीं चल सकेगा। यदि कुलधर्म में अच्छी परम्पराएँ होंगी तो आत्म-

---

१. आध्यात्मिक आलोक, पृ. १३०

२. आध्यात्मिक आलोक, पृ. १३०

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्म का पालन भी सरलता से हो सकेगा। इस प्रकार जितना ही कुल, गण एवं संघ धर्म सुदृढ़ होगा उतना ही श्रुत और चारित्रधर्म अच्छा निभेगा। जैसे सिक्खों में दाढ़ी रखने का संघ धर्म है—इसी प्रकार समाज में प्रभु स्मरण, गुरुदर्शन एवं स्वाध्याय दैनिक नियम बना लिया जाय तो संस्कारों में स्थिरता आ सकती है। समाज को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए संघ-धर्म आवश्यक है। जैसे वर्षा ऋतु में शादी न करना राजस्थान में समाज धर्म है—इसी प्रकार संघ धर्म के रूप में स्वाध्याय और तप-नियम आदि जुड़ जायँ तो व्यक्ति धर्म का पालन आसान हो सकता है।[1]

३. **शुद्धता या निर्दोषता और कठोर आत्मानुशासन**—साधना में निर्दोषता या शुद्धता के आचार्यश्री प्रबल पक्षधर थे। उनके मत में साधना का ध्येय विकृतियों का निवारण कर जीवन को निर्दोष बनाना है। जैन धर्म के प्रचार-प्रसार पर आयोजित अखिल भारतीय जैन विद्वत् परिद्ष के कोसाना (राजस्थान) की वार्षिक संगोष्ठी में उपस्थित विद्वानों के समक्ष उन्होंने प्रचार की अपेक्षा आचार प्रधान संस्कृति पर अत्यधिक जोर दिया था। अपने पंडित मरण से पूर्व उन्होंने अपने संतों को निर्देश दिया था कि वे स्थानक और आहार की गवेषणा एवं शुद्धता का पूर्ण लक्ष्य रखें।[2]

साधना निरतिचार बने एतदर्थ वे आहार की सात्विकता एवं अल्पता तथा स्वाध्याय आदि पर विशेष बल देते थे। इसके साथ ही साधना में कोई स्खलना न हो, इसके लिए कठोर आत्मानुशासन अथवा प्रायश्चित्त पर विशेष जोर दिया करते। साधक स्वयं ही कठोर प्रायश्चित्त ग्रहण करें, ताकि पुनः स्खलन न हो।

४. **प्रयोगशीलता**—आचार्यश्री का यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण था जिससे वे विविध साधना प्रवृत्तियों के प्रयोग (Experiment) करने की प्रेरणा किया करते थे। इसी प्रेरणा के फलस्वरूप स्वयं लेखक ने साधक शिविरों में समभाव साधना, इन्द्रिय-विजय, मनोविजय-साधना पर सामूहिक प्रयोग किए, जो सफल रहे और इनसे साधकों के जीवन-व्यवहार में पर्याप्त परिवर्तन घटित हुआ।

आचार्यश्री के इस दृष्टिकोण के पीछे आशय यही रहा होगा कि कोई चीज, भले ही वह साधना ही हो, थोपी न जाय अथवा विभिन्न साधना पद्धतियों में प्रयोग द्वारा उपयुक्त का चयन कर लिया जाय। जोधपुर शहर में इसी प्रकार 'श्वास पर ध्यान करने' के प्रयोग की प्रेरणा दी गई और परिणाम में जो उचित

१. जिनवाणी, फरवरी १९९१, पृ. २
२. जिनवाणी (श्रद्धांजलि विशेषांक) मई, जून, जुलाई, १९९१, पृ. ३५५

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

रहा, निष्कर्ष सामने आया उसे स्वीकार कर ध्यान करने की स्वतन्त्रता भी साधकों को प्राप्त हुई ।

जीवन व्यवहार और साधना—साधना का अभ्यास केवल शिविरकाल में ही न होकर व्यापक रूपेण जीवन-व्यवहार में भी हो, इसकी प्रेरणा आचार्य प्रवर प्रदान किया करते । दैनिक जीवन को निर्दोष बनाने की दृष्टि से ऐसे अनेक नियम आचार्य प्रवर दिलाया करते थे । आचार्य प्रवर द्वारा साधकों को दिलाये गये दो नियम प्रमाणभूत हैं—एक नियम था 'किसी की निन्दा नहीं करना । यदि किसी के लिए कुछ कहना ही है तो उसे स्वयं ही कहना या संस्था की बात हो तो संस्था के उत्तरदायी पदाधिकारी को ही कहना' का जीवन में कितना महत्त्व है । यह अनुभव करके ही देखा जा सकता है । फिर ज्ञात होगा कि उक्त नियम से बहुत बड़े अनर्थ से बचा जा सकता है । इसी प्रकार **'विश्वासघात नहीं करना'** का नियम भी जीवन में कितना आवश्यक है । इसी प्रकार 'धर्मस्थान में जाकर सामायिक करना, विवाह में ठहराव न करना, कुव्यसनों का त्याग' जैसे नियम उनकी सामाजिक उत्थान की उदार भावना के परिचायक हैं ।

साधना की आवश्यकता—स्वाध्याय प्रवृत्ति के पर्याय बने आचार्यश्री स्वाध्याय रूप श्रुतधर्म के साथ चारित्रधर्म के भी प्रबल पक्षधर रहे । उन्होंने क्रिया के बिना ज्ञान की पूर्ण सार्थकता नहीं मानी । गगन विहारी पक्षी का उदाहरण देकर उन्होंने बताया कि दो पंख उसके लिए आवश्यक हैं । एक भी पंख कटने पर पक्षी नहीं उड़ सकता, फिर मनुष्य को तो अनन्त ऊर्ध्व आकाश को पार करना है, जिसके लिए श्रुत एवं चारित्रधर्म दोनों की साधना आवश्यक है ।[1] अपने प्रवचनों में अन्यत्र भी साधना की आवश्यकता बताते हुए उन्होंने कहा था—'तन की रक्षा और पोषण के लिए लोग क्या नहीं करते, परन्तु आत्मपोषण की ओर कोई विरला ही ध्यान देता है । **पर याद रखना चाहिए कि तन यदि एक गाड़ी है तो आत्मा उसका चालक है । गाड़ी में पेट्रोल देकर चालक को भूखा रखने वाला धोखा खाता है ।**[2] सारगर्भित शब्दों में 'जीवन को उन्नत बनाने एवं उसमें रही हुई ज्ञान-क्रिया की ज्योति जगाने के लिए आवश्यकता है साधना की ।[3] उनके आत्मिक अध्ययन एवं साधनामय जीवन के अनुभवों से निरत साधना की आवश्यकता को उक्त मार्मिक प्रतिपादन प्रत्येक साधक को साधनामय जीवन जीने की महती प्रेरणा देता है ।

---

१. जिनवाणी, फरवरी १९९१, पृ. ७

२. जिनवाणी, नवम्बर १९९०, पृ. ६

३. आध्यात्मिक आलोक, पृ. ५

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

साधना का स्वरूप—आचार्यश्री के विचार से साधना की सामान्यतः तीन कोटियाँ हैं (i) समझ को सुधारना (या सम्यग्दर्शन की प्राप्ति)। साधक का प्रथम कर्तव्य है कि वह धर्म को अधर्म व सत्य को असत्य न माने। देव अदेव, संत-असंत (साधु-असाधु) की पहचान भी साधक के लिए आवश्यक है। पाप नहीं छोड़ने की स्थिति में उसे बुरा मानना और छोड़ने की भावना रखना साधना की प्रथम श्रेणी है। (ii) देश विरति या अपूर्ण त्याग। इसमें पापों की मर्यादा बँध जाती है अथवा सम्पूर्ण त्याग की असमर्थता में यह आंशिक त्याग है तथा श्रावक जीवन है। (iii) सम्पूर्ण त्याग या साधु जीवन।[1] आचार्यश्री ने साधना में प्रथम स्थान अहिंसा और द्वितीय स्थान सत्य को दिया।[2] निश्चय ही आचार्यश्री का अभिप्रेत हिंसादि पाँचों आस्रवों के त्याग का रहा होगा। क्योंकि आचार्य प्रवर की सेवा में जब भी साधक शिविर आयोजित हुए, वे हमेशा साधकों को पाँच आस्रवों का और अठारह पापों का त्याग करवाकर दयाव्रत में रहते हुए ध्यानादि साधना की प्रेरणा देते थे।

साधना स्वरूप की चर्चा अन्यत्र भी हुई है जहाँ प्रातःकाल जीवन का निरीक्षण एवं संकल्प ग्रहण के साथ परीक्षण एवं प्रतिक्रमण के द्वारा संशोधन इस प्रकार अनुशासनपूर्वक दिनचर्या बाँधकर कार्य करना। मन को शान्त एवं स्वस्थ रखने हेतु आचार्य प्रवर ने ब्रह्ममुहूर्त में निद्रा त्याग, चित्त शुद्धि के लिए ध्यान, देवाधिदेव अरिहंतों के गुणों का भक्तिपूर्वक १२ बार वन्दन, त्रिकाल सामायिक और आत्म-निरीक्षण, हितमित और सात्विक आहार, द्रष्टा भाव का अभ्यास और सदा प्रसन्न रहने के अभ्यास को आवश्यक बताया। शरीर की चंचलता की कमी हेतु कायोत्सर्ग एवं ध्यान-कायोत्सर्ग में शिथिलीकरण, एक श्वास में जितने नवकार मंत्र जप सकें, जपें तथा मन की साधनार्थ अनित्यादि भावनाओं का चिंतन।

साधक संघ के सदस्यों को घर पर नियमित साधना करने हेतु जिस समग्र एवं समन्वित साधना का आचार्यश्री ने निर्देश दिया वह इस प्रकार है—(i) प्रातः उठकर अरिहंत को १२ वंदन, चार लोगस्स का ध्यान, चौदह नियम एवं तीन मनोरथ का चिंतन (ii) १५ मिनिट का ध्यान (iii) कषाय विजय का अभ्यास (iv) प्रतिदिन एक घण्टा मौन (v) प्रतिदिन एक विगय का त्याग (vi) ब्रह्मचर्य का पालन (अपनी-अपनी मर्यादानुसार) (vii) प्रतिमाह उपवास, दयाव्रत और पौषध (अलग-अलग साधकों की श्रेणी अनुसार) (viii) प्रतिदिन आधा घण्टा स्वाध्याय (ix) समाज सेवा के लिए महीने में २ दिन या अधिक (साधक श्रेणी के अनुसार)।

---

१. जिनवाणी, जनवरी १९९१, पृ. ३–४

२. आध्यात्मिक आलोक, पृ. ५५

Jain Educationa International   For Personal and Private Use Only   www.jainelibrary.org

ध्यान-साधना के विषय में आचार्यश्री के विचार—ध्यान साधना क्या है, इस सम्बन्ध में आचार्यश्री ने बताया—'ध्यान वह साधना है जो मन की गति को अधोमुखी से ऊर्ध्वमुखी एवं बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी बनाने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इसे आंतरिक तप माना गया है। ध्यान से विचारों में शुद्धि होती और उनकी गति बदलती है।[1] वैदिक परम्परा में योग या ध्यान चित्तवृत्तियों के निरोध को माना है परन्तु जैन दृष्टि में चित्तवृत्तियों का सब तरफ से निरोध करके किसी एक विषय पर केन्द्रित कर उस पर चिंतन करना ध्यान है। आचार्यश्री के अनुसार परम तत्त्व के चिंतन में तल्लीनतामूलक निराकुल स्थिति को प्राप्त करवाने वाला ध्यान ही यहाँ इष्ट है।[2]

आचार्यश्री के अनुसार ध्यान का प्रारम्भ अनित्यादि भावनाओं (अनुप्रक्षाओं) के चिंतन से होता है। उन्होंने ध्यान की ४ भूमिकाएँ बताई[3]—(i) संसार के पदार्थों से मोह कम होने पर मन की चंचलता कम होना (ii) चिंतन—मैंने क्या किया? मुझे क्या करना शेष है? (iii) आत्मस्वरूप का अनुप्रेक्षण (iv) राग-रोष को क्षय कर निर्विकल्प समाधि प्राप्त करना। उन्होंने ध्यान के लिए जितेन्द्रिय और मंदकषायी होना आवश्यक बताया। उनका विचार था कि ध्यान के लिए कोई तब तक अधिकारी नहीं होता जब तक हिंसादि ५ आस्रव और काम, क्रोध को मंद नहीं कर लेता।

साधक संघ के सदस्यों को ध्यान में पंच परमेष्ठी के गुणों का चिंतन करते हुए वैसा ही बनने की भावना करना तथा अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व और अन्यत्व भावनाओं के चिंतन करने का निर्देश दिया गया था।

आचार्यश्री के अनुसार ध्यान साधना की विभिन्न पद्धत्तियाँ अभ्यासकाल में साधना के प्रकार मात्र ही हैं, स्थायित्व तो वैराग्यभाव की दृष्टि से चित्तशुद्धि होने पर ही हो सकता है।

साधना की कितनी ही गहन-गंभीर व्याख्या कर दी जाय परन्तु साधक लाभान्वित तभी होंगे जब वे उसे आत्मसात करें क्योंकि साधना अंततोगत्वा अनुभव है, अनुभूति है, बौद्धिकता नहीं।

—३५, अहिंसापुरी, फतहपुरा, उदयपुर-३१३००१

---

१. जिनवाणी, ध्यान विशेषांक, जन., फर., मार्च १६७२, पृ. १०

२. जिनवाणी, ध्यान विशेषांक, पृ. ११

३. जिनवाणी, ध्यान विशेषांक, पृ. १५-१६

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org